DOI: 10.51220/hjssh.v5i1.12

Himalayan J. Soc.Sci. & Humanities Vol- 5 pp.103 -104, December, 2010, ISSN. 0975 - 9891

'रम्माण' एक प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर

अजयपाल सिंह नेगी

मानव शास्त्र विभाग,

हे0न0ब0 केन्द्रीय गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल

Received: 23-11-2010 **Revised: 19-12-2010** **Accepted: 31-12-2010**

ABSTRACT

"उत्तराखण्ड हिमालय में आदि काल से विभिन्न सांस्कृतिक विविधताऐं रहीं हैं। जिनके अवशेष–प्रमाण यहां की सामाजिक परम्परा में आज भी देखने को मिलती हैं। रामायण काल की व महाभारत कालीन समय की पांडव नृत्य कला भी एक प्राचीन परम्परा है। यह आज भी देखने को मिलती है, जो उनके समय की संस्कृति को दर्शाती है।"

Keywords:-Story of Rama, Cultural Haritage

सांस्कृतिक परम्परायें देशकाल परिस्थिति के अनुरूप बनतीं रही व उनमें परिवर्तन आते रहे। यहाँ पर पूर्व में आदिम जाति किन्नर, यक्ष, भैरव, गन्धर्व, किरात, तगंण, परतंगण व तुर्वसु जन थे। जिनको हम ऋगवैदिक काल से पहले मान सकते हैं, वे यहाँ पर रहते थे। उनका अधिपत्य रामायण व महाभारत काल में भी यहाँ पर था।

केदार भूमि होने से यहां पर 'शैव–परम्परा' का प्रचलन था, शिव 'ताण्डव' व 'नाद' को अनादि देव होने के फलस्वरूप यहाँ पर ताण्डव–पाण्डव संस्कृति थी।

आठवीं सदी में आदि गुरू शंकराचार्य के आगमन पर यहाँ दो मठों के (बद्रीनाथ व केदारनाथ) स्थापित होने के बाद यहाँ पर वैश्णव संतों का भी आगमन हुआ, वे वैरागी नाम से जाने जाते थे। कालान्तर में उनका प्रवास यहाँ धार्मिक आवास के रूप में हुआ। वैष्णवता यहाँ पर काफी वृहद तरीके से सामाजिक सांस्कृतिक रूप में परिवर्तित हुई। वैष्णव मठों की यहाँ पर स्थापना होने लगी।[1] भजन कीर्तन के साथ–साथ वैष्णववादी सन्तों ने भगवान विष्णु के अवतारों को सिद्ध करने के लिए 'चर्तुमास' पूजा का प्रचलन यहाँ शुरू हो गया। जगह–जगह वैष्णव प्रतिमाओं को बनाकर पूजा–प्रचार का विस्तार किया गया, उसको सार्थक प्रमाण देने के लिए मुखौटा नृत्य का प्रचलन शुरू हुआ, जो कि एक अंनूठा व बेमिसाल था।

यह आगे चलकर निरन्तर होता गया उसका प्रभाव यहां की सांस्कृतिकता पर पढ़ता चला गया। आगे चलकर 'साम्राज्य–वादी' ताकतों ने भी इस उत्सव को राजाज्ञां की परिधि में लाने का कार्य किया। जो हमेशा के लिये एक परम्परा बन गयी।

रम्माण का स्वरूप

यह परम्परा जोशीमठ के पास सलूड–डुंग्रा में शुरू हुई। यहाँ पर 'चर्तुमास' पूजा के प्रचलन पर 'राम कथा' को आयोजित किया जाता है। 'भूम्याल' जो कि स्थानीय गांवो का प्रधान देवता और प्रथम

©SHARAD

पूजनीय था उसके साथ भगवान 'नृसिंह' को एक मन्दिर में नहीं लाया जाता नृसिंह का मुखौटा बाहर आने पर 'भूम्याल' का निशान अन्दर रखा जाता है। परम्परागत 'भूम्याल' देवता का पस्वा गांव के सबसे पुराने परिवार से होता है। राम कथा का आयोजन 'नृसिंह' मुखौटे के साथ शुरूवात हुई है। धीरे–धीरे राम कथा का आयोजन मुखौटा नृत्य परम्परागत शैली के साथ प्रसिद्व होती गयी 'रम्माण' एक स्थानीय बोली का 'रामायण' से निकला हुआ शब्द है। समय के साथ–साथ नृत्य व कथायें स्थानीय भाषा का रूप लेने लगी। राम, सीता व लक्ष्मण के नृत्यों का 18 तालों में नृत्य होने लगा जिसमें धीरे–धीरे राम बनवास, सीता हरण, लंका दहन इत्यादि आते हैं। स्थानीयता पर जब प्रम्परा का स्वरूप बढ़ता गया तब यहां पर सीता, राम, लक्ष्मण के मन्दिर भी बनायें गये हैं जो कि आज भी यहां पर हैं। सीता का मन्दिर सीता के नाम से पड़ा जो कि सीतापुर (चांई) गांव में है। उस गांव का परम्परागत नाम 'चांई' है।

पात्रों की पात्रता

राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान, रम्माण के दिन से एक रात पहले मन्दिर प्रागण में मुखौटा नृत्य होता है। इसी दिन राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान के किरदारों की पात्रता देखी जाती है। इसके आधार पर पात्रीय वाद्य यन्त्रों का चयन होता है। अठ्ठारह वर्ष के पात्र–पात्रता निभाते हैं। उसमें उनकी चरित्र की उच्चता भी देखी जाती हैं वे पवित्र छवि के होने चाहिए। मल्ल युद्ध खेल का प्रदर्शन करने वाले चार मालों में से दो सफेद व दो लाल रंग में रंगते हैं, चार मालों में से एक लाल कुवँर जाति के लोग एक डुंग्री गांव से दो सफेद माल डंग्री व सलूड़ गांव से होते हैं। मल युद्ध की ऐतिहासिकता यह दर्शाती है कि यह परम्परा कत्यूरी राजाओं से चली है और सफेद मालों वाले सलूड़–डुंग्रा के लोग गोरखों का प्रतिनिध्व करते हैं जो कि एक ऐतिहासिक बैमनयस्ता मानी जा सकती है।

यह प्रर्दषन बड़ा ही संवेदनषील होता है, इसमें ग्राम मल्लसभा वाले अलग–अलग समुदायों का प्रतिनिधित्व करते है यह मल्ल युद्ध लगभग दो घण्टे तक चलता है इसमें दोनों पक्षों (लाल व सफेद मल्ल) की युद्ध की परीक्षा बड़े धैर्य के साथ होती है। जो समूह थक जाय उसके सर्मथक सीटियाँ बजाकर खत्म करते हैं कभी–कभी दोनों पक्षों में लड़ाई की सम्भावना भी बन जाती है किन्तु धैर्यता के साथ लोग इसको मानाते हैं।

इसी तरह की परम्परा केदार घाटी में जामु, जाल–मल्ला, चौमासी, मैखंडा और जाल–तल्ला गांव में भी पायी जाती है। अत्यधिक प्राचीनता 'रम्माण' परम्परा की झलक बाम्पा, द्रोणागिरी, तोलमा, लाता, सुभाई, तपोवन, ढाक, बड़गांव, पाण्डुकेष्वर, सीतापुर (चांई), रविगांव, जोशीमठ के नृसिंह मन्दिर में है। आज इसका स्वरूप सिमटता हुआ सेलंग, डुंग्री, सलूड़–डुंग्रा गांवो में पाया जाता है।[2]

यह परम्परा आज भी उत्तराखण्ड में एक प्राचीन 'धरोहर' के रूप में विद्यमान है। जो कि धीरे–धीरे विष्व के मानचित्र में अपनी 'प्राचीनता' के स्वरूप को बिखेरती जा रही है। स्थानीय बुद्वीजीवियों का भी इस विधा को विश्वस्वरूप बनाने का प्रयास जारी है। इस पर युद्ध स्तर पर रचनात्मक कार्य चल रहा है।[3]

सन्दर्भ–

1. शिव प्रसाद डबराल 'चारण' 'उत्तराखण्ड का इतिहास' से रमादास गौड़–हिन्दुत्व, पृष्ठ 664
2. शोधकर्ता के बतौर अनवेशण करके प्रो0 डी0आर0 पुरोहित से व्यक्तिगत चर्चा
3. प्रो0 डी0 पी0 सकलानी से व्यक्तिगत चर्चा